

(1) उत्पादन अवधारणा/अभिमुखीकरण (Production Concept/Orientation)—विपणन की यह अवधारणा अत्यन्त पुरानी है। प्रारम्भिक अभिमुखीकरण को उन्होंने उत्पादन अवधारणा/अभिमुखीकरण (Production-orientation) की संज्ञा दी है। इस स्थिति में वस्तुओं और सेवाओं का अभाव था। अतः मुख्य समस्या उत्पादन वृद्धि की थी, न कि विक्रय की। विक्रेता बाजार (Sellers' Market) की स्थिति थी। विक्रेता बाजार में जो भी वस्तु प्रस्तुत करता था, वह तुरन्त बिक जाती थी।

(2) वित्तीय अवधारणा/अभिमुखीकरण (Financial Concept-orientation)—फिलिप कोटलर के अनुसार दूसरी स्थिति वित्तीय अवधारणा अथवा वित्तीय-अभिमुखीकरण (Financial-orientation) की थी। इस स्थिति में व्यावसायिक फर्मों ने अनुभव किया कि लाभों के लिए मुख्य अवसर विलय और वित्तीय एकीकरण (Merger and Financial Consolidations) द्वारा औद्योगिक ढाँचे को विवेकपूर्ण बनाने पर निर्भर है।

(3) विक्रय अवधारणा/अभिमुखीकरण (Sales Concept-orientation)—तीसरी स्थिति को फिलिप कोटलर ने विक्रय-अभिमुखीकरण (Sales-orientation) की संज्ञा दी है। इस स्थिति में वस्तुओं के अभाव के स्थान पर ग्राहकों का अभाव महसूस किया गया। विज्ञापन बजटों में वृद्धि हुई, विक्रय शक्ति का विस्तार किया गया, ब्राण्डिंग, पैकेजिंग एवं विक्रय संवर्द्धन महत्वपूर्ण औजार बन गये और विपणन अनुसन्धान का प्रयोग किया जाने लगा जिससे उपभोक्ता आवश्यकताओं को प्रेरित करने और बाजारों की खोज के नये तरीकों का पता लगाया जा सके।

(4) विपणन अवधारणा/अभिमुखीकरण (Marketing Concept-orientation)—फिलिप कोटलर ने चौथी और आधुनिक स्थिति को विपणन अवधारणा अथवा विपणन-अभिमुखीकरण (Marketing-orientation) कहा है। तीव्र प्राविधिक और सामाजिक परिवर्तन, गहन प्रतिस्पर्धा और उच्च सन्तुष्ट उपभोक्ता आवश्यकताओं (Highly Satisfied Consumer Wants) के समय में विक्रय-अभिमुखीकरण के आधार पर व्यवसाय को लाभ पर नहीं चलाया जा सकता, अतः व्यावसायिक फर्मों का झुकाव अब विपणन-अभिमुखीकरण की ओर है। यह उल्लेखनीय है कि विपणन-अभिमुखीकरण अनेक रूपों में विक्रय-अभिमुखीकरण से भिन्न है। विक्रय-अवधारणा (Sales Concept) फर्म के विद्यमान उत्पादों से प्रारम्भ होती है और इसके अन्तर्गत लाभप्रद विक्रय परिमाण को प्रोत्साहित करने के लिए विक्रयण और प्रवर्तन का कार्य किया जाता है। इसके विपरीत, विपणन अवधारणा फर्म के विद्यमान और भावी ग्राहकों एवं उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु उत्पादों और कार्यक्रमों को समन्वित किया जाता है और आशा की जाती है कि सार्थक मूल्य सन्तुष्टि (Meaningful Value Satisfaction) उत्पन्न करके फर्म लाभ कमायेगी।

फिलिप कोटलर द्वारा बतायी उपरोक्त चारों प्रारम्भिक विपणन अवधारणाओं के अतिरिक्त बाद में आने वाले विपणन विशेषज्ञों ने विपणन की अग्र अवधारणाओं का भी प्रतिपादन किया है :

(5) उत्पाद अवधारणा (Product Concept)—उत्पाद अवधारणा उत्पाद की किस्म, आकार, रंग-रूप एवं डिजाइन आदि के सुधार पर बल देती है। यह अवधारणा इस मान्यता पर आधारित है कि यदि हमारा उत्पाद अच्छा होगा तो सात समुद्र पार से भी क्रेता खिंचा-खिंचा चला आयेगा। अतएव उत्पाद अवधारणा को मानने वाले व्यवसायियों की यह धारणा है कि ग्राहक सदैव उच्च किस्म का उत्पाद ही चाहता है और वह इसके लिए मुँहमाँगा मूल्य देने को तत्पर रहता है। उत्पाद अवधारणा के आधार पर ही भारत के टाटा, रिलायन्स, हिन्दुस्तान लीवर्स, बिड़ला, ए. सी. सी. (ACC) आदि ने भारत के अधिकांश बाजारों पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया है।

(6) सामाजिक विपणन अवधारणा (Social Marketing Concept)—सामाजिक विपणन अवधारणा इस बात पर बल देती है कि विपणन संगठन का मूलभूत कार्य लक्ष्य आधारित बाजारों की आवश्यकताओं एवं हितों को ज्ञात करना है और प्रतियोगियों की तुलना में समाज को और अधिक प्रभावी ढंग से सन्तुष्टि प्रदान करना है।

राबर्ट लेण्डेज (Robert Landage) के अनुसार, "विपणन का कार्य केवल नये उत्पादों की बिक्री से ही सम्बन्धित नहीं है बल्कि सामाजिक दृष्टि से उत्पादों का मूल्यांकन करना भी है। आज सभी इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं कि विपणन अवधारणा केवल एक 'संगठनात्मक दर्शन' ही नहीं है वरन् एक सामाजिक दर्शन भी है। सामाजिक विपणन अवधारणा 'उपभोक्ता सन्तुष्टि' के साथ-साथ 'सामाजिक हित' को भी ध्यान में रखती है। उदाहरण के लिए, यह आवश्यक है कि तैयार खाद्य पदार्थ जो बेचे जा रहे हैं, वे न केवल

सुस्वाद हों वरन् शुद्ध एवं स्वास्थ्यवर्द्धक भी हों, वाहन न केवल उत्तम किस्म के हों वरन् प्रदूषण कम फैलाने वाले तथा कम ऊर्जा का उपभोग करने वाले भी हों, इसी प्रकार बेची जाने वाली अन्य वस्तुएँ समाज में बुराइयों, अनाचार, रोगों आदि को उत्पन्न करने वाली न हों।

फिलिप कोटलर (Philip Kotler) सामाजिक विपणन अवधारणा पर मत प्रकट करते हुए लिखते हैं, “यह विचारधारा उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं, इच्छाओं व हितों का निर्धारण करने तथा उन्हें अपने प्रतिद्वन्द्वियों की अपेक्षा ऐसे अधिक प्रभावशाली एवं कुशल ढंग से सन्तुष्ट करने से है जिससे कि उपभोक्ताओं तथा समाज के कल्याण की रक्षा हो सके अथवा उसमें वृद्धि की जा सके।”

यह विचारधारा बताती है कि विपणनकर्ता को सबसे पहले अपने लक्ष्य, बाजार की आवश्यकताओं, इच्छाओं एवं हितों का निर्धारण करना चाहिए, तत्पश्चात् ग्राहकों को अधिकतम सन्तुष्टि प्रदान करने तथा समाज का अधिकतम कल्याण करने पर ध्यान देना चाहिए। यह विचारधारा शुद्ध विपणन विचारधारा अर्थात् ग्राहक-प्रधान विचारधारा पर एक सुधार है। यह विचारधारा ग्राहकों की दीर्घकालीन समृद्धि पर ध्यान देती है।

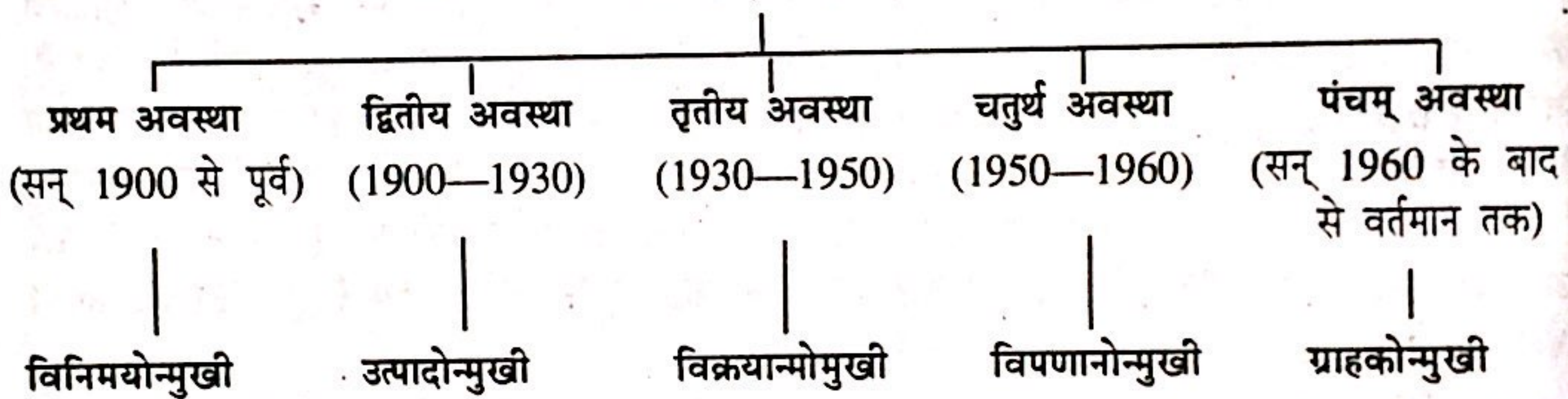
विपणन अवधारणा का उद्गम (EVOLUTION OF MARKETING CONCEPT)

अथवा

विपणन अवधारणा का उद्गम तथा विकास (ORIGIN AND DEVELOPMENT OF MARKETING CONCEPT)

अध्ययन में सुविधा की दृष्टि से विपणन अवधारणा के उद्गम अथवा उद्गम एवं विकास के इतिहास को निम्न पाँच अवस्था में बाँटा जा सकता है :

विपणन अवधारणा के उद्गम एवं विकास का इतिहास



(I) प्रथम अवस्था विनिमयोन्मुखी (Exchange-oriented Stage)—यह विपणन की सबसे प्रारम्भिक अवस्था है जबकि विपणन का उद्गम हुआ। इस अवस्था में लोगों ने खेती व उससे सम्बन्धित कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। एक समय ऐसा आया जबकि आवश्यकता से अधिक खेती की उपज पैदा करना शुरू हो गया। अतएव यह समस्या उत्पन्न हो गयी कि उत्पादन के आधिक्य को कैसे ठिकाने लगाया जाय। इस समस्या ने वाणिज्य एवं व्यापार को जन्म दिया जिसमें विनिमय की आवश्यकता पर बल दिया गया। यहीं से वस्तु विनिमय प्रथा का प्रारम्भ हुआ। लोगों ने अपने आधिक्य उत्पादन के बदले में अपनी आवश्यकता की अन्य वस्तुओं का विनिमय प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे लोगों ने एक ऐसे केन्द्रीय स्थान की तलाश करना प्रारम्भ किया जहाँ पर उत्पादन के आधिक्य को लाकर वस्तु विनियम किया जाय। धीरे-धीरे ऐसे केन्द्रीय स्थान ने बाजार (Market) का रूप धारण कर लिया। इसे ऐतिहासिक दृष्टि से बाजार का उद्गम माना जाता है। बाद में वस्तु विनिमय में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयीं। वस्तु विनिमय (Barter) की कठिनाइयों का निराकरण करने के लिए मुद्रा का उद्गम हुआ और वस्तु विनिमय का कार्य मुद्रा द्वारा सम्पन्न होने लगा जिसके कारण मुद्रा द्वारा विनिमय अत्यधिक मात्रा में होने लगा।

(II) द्वितीय अवस्था—उत्पादोन्मुखी (Production-oriented Stage)—‘विपणन अवधारणा’ पर विचार-विमर्श करते समय प्रबन्ध दर्शन (Management Philosophy) में होने वाले समानान्तर परिवर्तनों पर दृष्टि डालना आवश्यक है जिन्होंने विपणन अवधारणा को जन्म दिया। प्रारम्भ में औद्योगीकरण समाज में प्रबन्ध

उत्पाद-अभिमुखी (Production-oriented) था। विपणन की आवश्यकता केवल उत्पादन क्षमता के वितरण के लिए होती थी। ग्राहक के सम्बन्ध में निर्माता अनुमान लगा लेता था। ग्राहक की विशिष्ट आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया जाता था। इसका मुख्य कारण उत्पादन क्षमता की तुलना में ग्राहकों की माँग का अधिक होना था। दूसरे शब्दों में, प्रारम्भ में विक्रेता बाजार की स्थिति थी जहाँ पूर्ति की तुलना में माँग अधिक थी। ग्राहक वस्तुओं की प्रतीक्षा किया करते थे। वस्तु के विक्रय की कोई समस्या उस समय नहीं थी। उत्पादन-अभिमुखी प्रबन्ध में सामाजिक दायित्वों के प्रति पूर्ण उदासीनता थी। व्यवसाय का प्राथमिक उद्देश्य लाभ कमाना था। सेवा अथवा सामाजिक दायित्वों का कोई स्थान नहीं था। व्यवसाय में की जाने वाली प्रत्येक क्रिया द्वारा अधिकाधिक लाभ कमाने का प्रयास किया जाता था।

(III) तृतीय अवस्था—विक्रयान्मोमुखी (Sales-oriented Stage)—परन्तु जब ग्राहकों की माँग और उत्पादन क्षमता में साम्य (Equilibrium) स्थापित हुआ तो प्रबन्ध को अपने विपणन दर्शन पर पुनर्विचार के लिए बाध्य होना पड़ा। उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ प्रतिस्पर्द्धा में वृद्धि हुई। प्रभावशाली विक्रय शक्ति के अभाव में इस बढ़ती हुई प्रतिस्पर्द्धा के समय में उत्पादित माल का विक्रय करने में कठिनाई अनुभव की जाने लगी। विक्रय शक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रबन्ध ने विज्ञापन, विक्रय संवर्द्धन, विपणन अनुसन्धान, विक्रय प्रशिक्षण आदि की सहायता ली। इतना होते हुए भी अभी तक उत्पादन-अभिमुखी प्रबन्ध का ही प्रचलन था। यद्यपि ग्राहक के महत्व को महसूस किया गया परन्तु यह केवल संयुक्त उत्पादन (Corporate Production) के विक्रय के साधन के रूप में ही था। उत्पादन-अभिमुखी प्रबन्ध से भिन्नता करने के लिए इसे विक्रय-अभिमुखी प्रबन्ध की संज्ञा दी जा सकती है।

(IV) चतुर्थ अवस्था—विपणनोन्मुखी (Marketing-oriented Stage)—धीरे-धीरे विपणन की विक्रयोन्मुखी अवस्था में उत्पादकों तथा ग्राहकों में प्रतिस्पर्द्धा होने लगी। यह प्रतिस्पर्द्धा दिनों-दिन कटु होती गयी। इसने प्रबन्ध को विपणन दर्शन पर पुनः विचार करने के लिए बाध्य किया। इस कटु प्रतिस्पर्द्धा ने उत्पादकों को यह सोचने के लिए बाध्य किया कि बिना शक्तिशाली एवं प्रभावी विक्रय शक्ति (Sales Force) के उत्पादन का अधिक मात्रा में विक्रय करना सम्भव नहीं है। यहीं से ग्राहक का महत्व अनुभव होने लगा। यह कहा गया कि उत्पादन के आधिक्य को बेचने के लिए प्रचुर संख्या में ग्राहकों का होना आवश्यक है। इसके लिए यह आवश्यक है कि ग्राहकों की आवश्यकताओं का पता लगाया जाय तथा उसी के अनुसार माल का उत्पादन करके विक्रय किया जाय। विपणनोन्मुखी अवधारणा ने उत्पादकों को विक्रय तथा विपणन में अन्तर करने एवं समझने के लिए बाध्य किया। जहाँ एक ओर विक्रय विक्रेताओं की आवश्यकताओं की ओर ध्यान केन्द्रित करता है, वहीं दूसरी ओर, विपणन ग्राहकों की आवश्यकताओं की ओर ध्यान केन्द्रित करता है। यहीं से विपणनोन्मुखी अवस्था का उद्गम एवं विकास होना प्रारम्भ होता है। विपणनोन्मुखी अवस्था एक व्यापक समस्या है जिसमें विक्रयोन्मुखी अवस्था भी सम्मिलित है।

(V) पंचम अवस्था—ग्राहकोन्मुखी (Customer-oriented Stage)—प्रतिस्पर्द्धा में निरन्तर वृद्धि के फलस्वरूप अभिमुखी प्रबन्ध वाली कम्पनियों के सम्मुख कठिनाइयाँ बढ़ीं। उपभोक्ता माँग में तेजी से परिवर्तन के कारण संगठन लगातार समस्याग्रस्त रहने लगा। इन कठिनाइयों का विश्लेषण यह बताता है कि ये कम्पनियाँ ऐसे उत्पादों के विक्रय का प्रयास कर रही थीं जो कि पहले काफी लोकप्रिय थे परन्तु इन्होंने स्वयं को बदलते हुए उपभोक्ताओं के अनुरूप बनाने का प्रयास नहीं किया। अब इन्होंने अनुभव किया कि बाजार में सफलता प्राप्त करने के लिए ग्राहकों के महत्व को स्वीकार करना होगा। जब ग्राहक के महत्व को समझा गया तो ग्राहक-अभिमुखीकरण (Customer-orientation) स्वीकृति विपणन दर्शन बन गया। वास्तव में, देखा जाए तो इस परिवर्तन के फलस्वरूप व्यवसाय का सम्पूर्ण प्रबन्ध दर्शन ही बदल गया। अब व्यवसाय का उद्देश्य अल्पकालीन अधिकतम लाभ की तुलना में दीर्घकालीन लाभ बन गया है।

आधुनिक विपणन अवधारणा के आधारस्तम्भ, मूलाधार अथवा अंग

(FUNDAMENTALS OR PILLARS OR COMPONENTS OF MODERN MARKETING CONCEPT)

विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं एवं अन्य विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि आधुनिक विपणन अवधारणा (Marketing Concept) के निम्नांकित चार आधारस्तम्भ हैं—(I) ग्राहक-अभिमुखीकरण (Customer-orientation), (II) सुग्रीहित विपणन (Integrated Marketing), (III) ग्राहक सन्तुष्टि (Customer Satisfaction), (IV) उपभोक्ता कल्याण (Consumer Welfare)।